रानी लक्ष्मीबाई : झांसी की वह तलवार जिसके अंग्रेज भी उतने ही मुरीद थे जितने हम हैं

15 मार्च 1854. गोधूलि बेला में झांसी का सफेद शाही हाथी घुड़सवार दस्तों के साथ राजमहल की तरफ बढ़ रहा था. आमतौर पर झांसी के शाही मेहमानों की अगवानी इसी तरह की जाती थी. लेकिन उस दिन हाथी के ऊपर लगे और लाल मखमल से सजे चांदी के हौद में जो शख्स सवार था वह न सिर्फ झांसी के राजघराने बल्कि पूरी रियासत की तकदीर बदल सकता था.

यह शख्स थे मशहूर ऑस्ट्रेलियन वकील लैंग जॉन जो रियासत की कर्ता-धर्ता और महाराज गंगाधर राव की विधवा रानी लक्ष्मीबाई के विशेष आग्रह पर आगरा से झांसी पहुंचे थे. उस जमाने में लैंग को हिंदुस्तान में कंपनी शासन की तानाशाही के खिलाफ मुखर पैरवी करने के लिए जाना जाता था. रानी चाहती थीं कि वे लंदन की अदालत में डॉक्टराइन ऑफ लैप्स (गोद निषेध कानून) के विरोध में झांसी का पक्ष रखें. इस नीति के तहत दत्तक पुत्रों को रियासतों का वारिस मानने से इनकार कर दिया गया था. पुरोहितों ने लक्ष्मीबाई को लैंग से मिलने के लिए सूर्यास्त के बाद और चंद्रोदय से पहले का समय सुझाया था. यह वही वक़्त था.

रास्ते में लैंग लगातार सोचे जा रहे थे कि किस तरह ईस्ट इंडिया कंपनी अपनी मित्र रियासत झांसी को हड़पने की साजिश कर रही थी. वहीं महल में इंतजार कर रही रानी के जेहन में गुजरे 12 साल खुद को दोहरा रहे थे. वे साल जो घुड़सवारी और तीरदांजी के खेलों में उलझी मासूम मनु को वक़्त से पहले ही दुविधा और जिम्मेदारियों से भरी इस दहलीज़ पर खींच लाए थे.

मणिकर्णिका यानि मनु का जन्म तीर्थ नगरी बनारस में एक मराठी ब्राह्मण परिवार में हुआ था. उनके जन्म को लेकर अलग-अलग मत हैं. जिनके मुताबिक उनकी जन्मतिथि 1828 से 1835 के बीच बताई जाती है. मनु के पिता मोरोपंत तांबे, पेशवा बाजीराव के परिवार के खिदमतगार थे और बिठूर रियासत के पेशवा के यहां काम करते थे. चार वर्ष की आयु में ही अपनी मां भागीरथी बाई को खो देने के बाद मनु अपना अधिकतर समय अपने पिता के साथ पेशवा दरबार में गुजारने लगीं. मोरोपंत की आजाद परवरिश का असर यह हुआ कि बचपन में ही मनु नाना साहेब और तात्या टोपे जैसे साथियों के साथ जंग के हुनर सीखने लगी थीं.

1842 में मनु का विवाह झांसी नरेश गंगाधर राव नेवलकर के साथ हुआ जिसके बाद उन्हें लक्ष्मीबाई

नाम मिला. 1851 में रानी ने राजकुंवर दामोदर राव को जन्म दिया. लेकिन कुंवर चार महीने से अधिक नहीं जी पाए. पुत्र की मृत्यु के साथ ही मानो लक्ष्मीबाई का सौभाग्य भी उनका साथ छोड़ गया था. बताया जाता है कि गंगाधर राव इस सदमे को बर्दाश्त नहीं कर पाए और दिन-ब-दिन उनकी सेहत गिरती चली गयी. इसे देखते हुए 1853 में महाराज ने अपने दूर के भाई आनंद राव को गोद लेने का निर्णय लिया जिन्हें वे दिवंगत कुंवर की याद में दामोदर राव नाम से ही पुकारते थे.

यही वह दौर भी था जब ब्रिटिश सरकार ने रियासतों और राजे-रजवाड़ों द्वारा संतान गोद लेने की प्रथा को लेकर बेहद सख्त रुख अपना लिया था. इसे ध्यान में रखते हुए गोद लेने की पूरी रस्म झांसी में तैनात ईस्ट इंडिया कंपनी के राजनीतिक एजेंट मेज़र एलिस की मौजूदगी में अदा की गयी. एलिस के जरिए महाराज ने रस्म से जुड़े सारे दस्तावेज और अपनी वसीयत तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी तक भिजवाए. इस वसीयत के मुताबिक वयस्क होने के बाद दत्तक पुत्र दामोदर राव झांसी का अगला महाराज होना था और तब तक लक्ष्मीबाई को उनकी और रियासत की सरपरस्त रहना था.

मेजर एलिस ने ये कागजात अपने वरिष्ठ अधिकारी जॉन मैल्कॉम को सौंप दिए. हालांकि मैल्कॉम लक्ष्मीबाई को राजनैतिक तौर पर इस पद पर नहीं देखना चाहता था, फिर भी वह महाराज की वसीयत के समर्थन में था. लेकिन लॉर्ड डलहौजी की मंशा कुछ और थी. उसने वसीयत को मानने से इनकार कर दिया और नए कैप्टन अलैक्जेंडर स्कीन को झांसी की जिम्मेदारी सौंप दी.

कुंवर के अधिकारों को लेकर चिंतित लक्ष्मीबाई ने तीन दिसंबर 1853 को एक बार फिर मेजर एलिस के जरिए मैल्कॉम तक दरख्वास्त भिजवाई. तब तक मैल्कॉम हवा का रुख भांप चुका था लिहाजा उसने वह खत आगे नहीं जाने दिया. करीब दो महीने बाद 16 फरवरी 1854 को रानी ने इस बारे में आख़िरी बार अंग्रेज हुक्मरानों से संपर्क साधने की कोशिश की जो बेनतीजा रही.

फिर मार्च, 1854 में कंपनी ने रानी लक्ष्मीबाई को किला छोड़कर नगर में स्थित अन्य महल में जाने का फरमान सुनाया. उनकी गुज़र के लिए 5000 रुपए प्रति माह की पेंशन बांध दी गई. अंग्रेजों ने दामोदर दास को राजा की निजी संपदा का तो वारिस मान लिया गया था लेकिन उन्हें बतौर कुंवर स्वीकार नहीं किया. रानी अंग्रेजों की नीयत भांप चुकी थीं सो उन्होंने लैंग जॉन को बुलावा भिजवा दिया.

लैंग जॉन ने रानी लक्ष्मीबाई के साथ अपनी पूरी मुलाकात का जिक्र अपनी किताब वांडरिंग्स इन इंडिया एंड अदर स्केचेज ऑफ लाइफ इन हिंदुस्तान में किया है. इसमें उन्होंने लिखा है, 'झांसी के राजा ब्रिटिश सरकार के विश्वसनीय थे. कंपनी ने महाराज के भाई को ब्रिटिश फौज में अफसर बनाते हुए एक प्रशस्ति पत्र सौंपा. जिसमें उन्हें महाराज कहकर संबोधित किया गया. साथ ही उनसे वायदा किया गया कि ब्रिटिश हुकूमत इस उपाधि और इसके साथ जुड़ी स्वतंत्रता को राजा और उसके उत्तराधिकारियों के लिए सुनिश्चित करती है…'

लैंग आगे लिखते हैं, 'कमरे के एक तरफ पर्दा लगा हुआ था और लोग उसके पीछे खड़े होकर बातें कर रहे थे…तभी पीछे से रानी की आवाज आयी. पर्दे के पास आकर वे मुझे अपनी परेशानियों के बारे में बताने लगीं. तभी अचानक से नन्हे दामोदर ने वो पर्दा खींच दिया और मैं रानी की एक झलक देख पाया. वह एक मध्यम कदकाठी की औरत थीं. युवावस्था में रानी बेहद खूबसूरत रही होगीं क्योंकि उनके चेहरे में

अब भी काफी आकर्षण था. रानी की भाव-भंगिमाएं विद्वता भरी थीं और उनके नैननक्श काफी सुंदर थे. वे न तो बहुत गोरी थीं और न ही बहुत सांवली. उन्होंने सफेद कपड़े पहने हुए थे और सिवाय कानों की स्वर्ण बालियों के उनके तन पर कोई आभूषण नहीं था.'

लैंग ने आगे लिखा है, 'मैंने रानी की तारीफ में कहा, यदि गर्वनर जनरल भी मेरी तरह इतने सौभाग्यशाली होते जो आपके दर्शन कर पाते, तो वे अवश्य ही झांसी को उसकी खूबसूरत रानी के हवाले कर देते. इस तारीफ के बदले में रानी ने शिष्टता भरा जवाब दिया कि ऐसा कोई कोना नहीं जहां आपके द्वारा गरीबों की मदद करने के किस्सों का जिक्र न होता हो.'

लैंग के मुताबिक उन्होंने रानी को समझाने की कोशिश की कि गवर्नर जनरल के हाथ में अब इतनी ताकत नहीं है कि वे रियासत को लेकर निर्णय ले सकें और यह तभी होगा जब इंग्लैंड से इसका इशारा होगा. उन्होंने सलाह दी कि समझदारी इसी में है कि तब तक रानी दत्तक पुत्र के साथ हो रहे इस अन्याय के खिलाफ याचिका दर्ज करें और अपनी पेंशन लेती रहें. लैंग लिखते हैं, 'इस बात पर लक्ष्मीबाई ने तीखी प्रतिक्रिया दी और कहा, मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी. मैंने अत्यंत नम्रतापूर्ण ढंग से उन्हें समझाने की कोशिश की. कहा कि इस विद्रोह का कोई अर्थ नहीं निकलने वाला है. ब्रिटिश सेना ने लाव-लश्कर के साथ तीन तरफ से आपको घेर रखा है. बगावत करने से आपकी आख़िरी उम्मीद भी खत्म हो जाएगी...रात के दो बज चुके थे. वे तकरीबन मेरी सभी बातों को मान गयीं थीं. सिवाय अंग्रेज सरकार से अपनी पेंशन लेने के.'

22 अप्रैल 1854 को लैंग जॉन ने लंदन की अदालत में लक्ष्मीबाई का पक्ष रखा लेकिन असफल रहे.

लक्ष्मीबाई को न सिर्फ अंग्रेजों से बल्कि भारतीय राजाओं से भी लड़ना पड़ा था.

लक्ष्मीबाई को समझ आ रहा था कि यदि झांसी का आत्मसम्मान वापस दिलावाना है तो देर-सवेर ब्रिटिश फौजों से युद्ध अवश्य होगा. लिहाजा रानी ने रियासत की सेना के साथ आम पुरुषों और महिलाओं को भी युद्ध के लिए तैयार करना शुरू कर दिया.

समय के साथ कुंवर दामोदर सात वर्ष के हो गए. रानी ने उनका उपनयन संस्कार करवाने का निश्चय किया. इसके बहाने लक्ष्मीबाई झांसी के सभी मित्र राजाओं, दीवानों और नवाबों को बुलाना चाहती थीं ताकि आगे की रणनीति तय की जा सके. इस कार्यक्रम में नाना साहेब, राव साहेब, दिल्ली के सुल्तान बहादुर शाह और अवध के नवाब को आमंत्रित किया गया. बैठक में हिंदू और मुसलमान सैनिकों की फौज के प्रति नाराज़गी का जिक्र प्रमुखता से हुआ.

रानी की जीवनी पर लिखी एक किताब के मुताबिक फरवरी 1857 में तात्या टोपे चोरी-छिपे लक्ष्मीबाई को एक ख़त देकर गए जिसमें क्रांति का आह्वान था. जानकार कहते हैं कि रानी उस समय को बगावत के लिए सही नहीं मान रही थीं तो निर्णय लिया गया कि बग़ावत का बिगुल 31 मई 1857 को फूंका जाएगा. रोटी और कमल के फूल को क्रांति के निशान के तौर पर चुना गया. लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण ढंग से 10 मई को कलकत्ता के पास बैरकपुर छावनी में विरोध के स्वर फूट पड़े और क्रांति तीन सप्ताह पहले ही शुरू हो गयी.

सात जून को ये क्रांतिकारी झांसी पहुंचे जहां रानी ने इनकी तीन लाख रुपए की मांग को स्वीकार कर लिया. अंग्रेजों को भेजे अपने पत्र में रानी ने साफ किया कि उन्होंने यह कदम नगरवासियों के साथ किले में मौजूद ब्रिटिश औरतों और बच्चों की जान-माल की रक्षा और शांति व्यवस्था बनाए रखने के लिए उठाया था. हालांकि जानकारों का कहना है कि बागियों को दी गयी यह मदद रानी की सोची-समझी रणनीति का हिस्सा थी.

क्रांतिकारियों के डर से अंग्रेज अफ़सरों ने झांसी छोड़ दिया था और रियासत एक बार फिर रानी के कब्जे में आ गई. इसी बीच महाराष्ट्र के सदाशिव राव ने झांसी से तकरीबन 30 मील दूर कथुरा के किले पर कब्जा कर लिया और घोषणा करवा दी कि अब से इलाके का प्रत्येक गांव उसके अधीन होगा. इस संकट के साथ ही झांसी के कुछ सरदारों ने रानी की सत्ता पर उंगली उठाना शुरू कर दिया. इससे पहले कि रियासत में बगावत होती, रानी ने सदाशिव को खदेड़ते हुए उसके कब्जे से कथुरा के किले को छुड़वा लिया. लेकिन कुछ समय बाद सदाशिव फिर आया. इस बार रानी ने उसे बंदी बना लिया.

इन युद्धों से झांसी उभर ही रही थी कि अक्टूबर 1854 में ओरछा का एक सिपहसालार साथे खान अपनी टुकड़ियों को लेकर झांसी की तरफ बढ़ने लगा. अपने घायल सिपाहियों और नागरिकों को इकठ्ठा कर लक्ष्मीबाई साथे खान पर टूट पड़ीं और उसे खदेड़ दिया. इन लड़ाइयों ने झांसी को कमजोर जरूर बनाया, लेकिन लक्ष्मीबाई के नेतृत्व और युद्ध कौशल में काफी इजाफा कर दिया.

कुछ ही महीने गुज़रे थे कि छह जनवरी 1858 को हैमिल्टन के नेतृत्व में अंग्रेज़ फौजों ने झांसी का रुख किया. अंग्रेजों ने रानी को बगावत में हिस्सेदारी का कसूरवार माना था. सात फरवरी को हैमिल्टन ने एक रिपोर्ट तैयार करके अपने अफसरों को भेजी. इसमें लिखा था, 'यद्पि रानी ने ब्रिटेन के खिलाफ लड़ने की इच्छा जाहिर नहीं की है, लेकिन इशारे कुछ ठीक भी नहीं हैं. किले में छह नयी बड़ी बंदूकें बना ली गई हैं जिनके लिए बारूद तैयार किया जा रहा है. इसके अलावा रानी ने कुछ बागियों को भी शरण दे रखी है.'

अंग्रेजों ने 14 फरवरी को लक्ष्मीबाई के नाम एक पत्र भेजा जिसमें उनसे स्पष्टीकरण मांगा गया. 15 मार्च तक रानी इस खत का जवाब नहीं सोच पायी थीं. वे जानती थीं कि युद्ध का अंजाम क्या होने वाला है. लेकिन जनादेश था कि झांसी फिरंगियों के अधीन नहीं जानी चाहिए. दूसरे लक्ष्मीबाई के पिता सहित अन्य सरदार भी युद्ध के पक्षधर थे. और पिछले तीन युद्धों में मददगार साबित हुए कई बागी सैनिक रानी की शरण में थे जिनके लिए अंग्रेजों के साथ किसी भी तरह के समझौते का मतलब सिर्फ मौत था. लिहाजा निर्णय ले लिया गया.

ब्रिटिश अधिकारियों ने आखिरी बार रानी के सामने निहत्थे मुलाकात की पेशकश रखी. उन्होंने यह कहते हुए इसे ठुकरा दिया कि अब अगली भेंट सेना के साथ ही होगी. जानकार कहते हैं कि इसे तीखे जवाब के बावजूद झांसी को एक बार और आत्मसमर्पण का मौका दिया गया. लेकिन लक्ष्मीबाई ने उसे भी ठुकरा दिया.

नतीजतन 23 मार्च 1858 को ब्रिटिश फौजों ने झांसी पर आक्रमण कर दिया. 30 मार्च को भारी बमबारी की मदद से अंग्रेज किले की दीवार में सेंध लगाने में सफल हो गये. लेकिन तभी तात्या टोपे 20,000

बागियों की फौज लेकर वहां पहुंच गए. तीन अप्रैल तक बागियों ने ब्रिटिश सेना को उलझाए रखा. उसके बाद सेना आखिरकार झांसी में प्रवेश कर ही गयी.

खुद को कमजोर होता देख लक्ष्मीबाई, झांसी की आखिरी उम्मीद दामोदर राव को अपनी पीठ बांध छोटी सैन्य टुकड़ी के साथ झांसी से निकल आईं. भारतीय इतिहास की विशेषज्ञ और अमेरिकी लेखिका पामेला डी टॉलर अपने एक लेख 'लक्ष्मीबाई : रानी ऑफ झांसी' में लिखती हैं, 'अगले 24 घंटे में तकरीबन 93 मील की दूरी तय करने के बाद रानी लक्ष्मी बाई काल्पी पहुंचीं जहां उनकी मुलाकात ब्रिटिश सरकार की आंखों की पहले से किरकिरी बने हुए नाना साहेब पेशवा, राव साहब और तात्या टोपे से हुई. 30 मई को ये सभी बागी ग्वालियर पहुंचे जहां का राजा जयाजीराव सिंधिया अंग्रेजों के समर्थन में था लेकिन उसकी फौज बागियों के साथ हो गई.'

जानकारी मिलते ही 16 जून की रोज़ अंग्रेज फौजें ग्वालियर भी पहुंच गईं. 17 जून की सुबह लक्ष्मीबाई अपनी अंतिम जंग के लिए तैयार हुईं. जन्म की ही तरह लक्ष्मीबाई की मृत्यु भी अलग-अलग मत हैं जिनमें लॉर्ड केनिंग की रिपोर्ट सर्वाधिक विश्वसनीय मानी जाती है. इसके मुताबिक रानी को एक सैनिक ने पीछे से गोली मारी थी. अपना घोड़ा मोड़ते हुए लक्ष्मीबाई ने भी उस सैनिक पर फायर किया लेकिन वह बच गया और उसने अपनी तलवार से झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का वध कर दिया.

अंग्रेजों के नज़रिए से लक्ष्मीबाई

रानी लक्ष्मीबाई की क्षमताओं का लोहा उनके प्रशंसक ही नहीं बल्कि उनके दुश्मन भी मानते थे. पामेला डी टॉलर इस बारे में लिखती हैं कि झांसी के राजनीतिक एजेंट एलिस के मन में रानी के लिए सहानुभूति थी. हालांकि उसका वरिष्ठ अधिकारी मैल्कॉम रानी को पसंद नहीं करता था, फिर भी उसने लॉर्ड डलहौजी को भेजे पत्र में लिखा था, 'लक्ष्मीबाई बेहद सम्मानीय महिला हैं और मुझे लगता है कि वे इस पद (सिंहासन) के साथ पूरा न्याय करने में समर्थ हैं.' यही नहीं, झांसी पर आखिरी कार्रवाई करने वाले सर ह्यू रोज ने कहा था, 'सभी विद्रोहियों में लक्ष्मीबाई सबसे ज्यादा बहादुर और नेतृत्वकुशल थीं. सभी बागियों के बीच वही मर्द थीं'

हालांकि कुछ अंग्रेज रानी के विरोधी स्वभाव से ख़फा भी थे. एक ब्रिटिश अफ़सर और वहां के अख़बारों ने रानी लक्ष्मीबाई की तुलना हिंदुस्तान की ईजाबेल (ईसाई मान्यताओं के मुताबिक अनैतिक स्त्री) से की जिसके सर पर कई अंग्रेजों का खून लगा था और उसे कड़े से कड़ा दंड मिलना चाहिए था.

जेएच सिलवेस्टर की रिपोर्ट 'रीकलेक्शन ऑफ द कैंपेन इन मालवा एंड सेंट्रल इंडिया' का जिक्र करते हुए इतिहासकार क्रिस्टोफर हिबर्ट कहते हैं कि रानी अपने रूप-रंग का प्रदर्शन करती थीं जिससे आकर्षित कई ब्रिटिश अधिकारी उन्हें बेवजह की तवज्जो देते थे. लेकिन इस बात को दूसरे कई अंग्रेज अफ़सरों ने ही नकार दिया था. मध्य भारत में तैनात सर रॉबर्ट हैमिल्टन का मानना था कि लक्ष्मीबाई बेहद मर्यादित, विनीत और समझदार महिला थीं जिनमें अच्छा शासक बनने की सारी योग्यताएं थीं. उनके सम्मान में लॉर्ड कंबरलैंड ने लिखा था, 'लक्ष्मीबाई असाधारण बहादुरी, विद्वता और दृढ़ता की धनी हैं. वह अपने अधीन लोगों के लिए बेहद उदार हैं. ये सारे गुण सभी विद्रोही नेताओं में उन्हें सबसे ज्यादा खतरनाक बनाते हैं. थर्ड बांबे लाइट कैवलरी के अफ़सर कॉर्नेट कॉम्ब ने लक्ष्मीबाई की बहादुरी और

हौसले को देखते हुए लिखा था, 'वो बहुत ही अद्भुत और बहादुर महिला थी. यह हमारी खुशकिस्मती थी कि उसके पास उसी के जैसे आदमी नहीं थे.'

साभार- https://satyagrah.scroll.in/ से